हमारी सनातन उपासना पद्धति

स्वामी तत्परानन्द रामकृष्ण मठ, बेलूड मठ, हावडा, पश्चिम बंगाल

प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है।
बाहय एवं अन्तःप्रकृति को वशीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।
कर्म, उपासना, मनःसंयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।
बस, यही धर्म का सर्वस्व है।
मत, अनुष्ठान–पद्धति, शास्त्र, मन्दिर अथवा अन्य बाह्य क्रिया–कलाप तो उसके गौण ब्यौरे मात्र हैं।

स्वामी विवेकानन्द

प्रस्तावना

स्वामी विवेकानन्द के ये उदगार साधना एवं सिद्धि के अभिलाषी साधकों के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हुए एक ऐसे साध्य की ओर इंगित करते हैं जिसमें अपने स्व स्वरूप की प्राप्ति अथवा इष्ट दर्शन का लक्ष्य सिद्ध होता हुआ सा ही प्रतीत होता है साथ ही जिसमें लक्ष्य प्राप्ति की इच्छा से किए गए सभी प्रयत्न भी स्वयं एवं समाज के लिए उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते है। उनके श्रीगुरूदेव श्रीरामकृष्णदेव उन्हें इस प्रकार से शिक्षित करते हैं कि वे प्राप्त सिद्धि को सम्पूर्ण मानव जाति के सामने में एक महत्तर लक्ष्य के रूप में सामान्य भाषा में एवं सरल राजमार्ग के रूप में उपस्थित करते हैं।

आइऐ उप + आसन, हमारा आसन घनीभूत भारत स्वरूप स्वामी विवेकानन्द के समक्ष लगाते हैं, सरल विश्वास के साथ उन्हें आत्मसात् कर हम क्या पाऐंगे इसे इस लिखित सत्संग के बाद ही निर्णय लेंगे।

गुरू श्रीरामकृष्णदेव एवं नरेन्द्रनाथ

हमें स्मरण रहे कि स्वयं स्वामी विवेकानन्द; नरेन्द्रनाथ दत्त अंग्रजी साम्राज्य द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली के एक मेधावी छात्र रहे हैं। उनके अंग्रेज आचार्य भी उनकी प्रखर बुद्धि की प्रशंसा करते हुए नहीं थकते थे। वे किसी भी मत पर पहुंचने से पहले उसे पूर्णतया जांच परख लेने की विलक्षण बौद्धिक क्षमता रखते थे। उनसे तर्क करना किसी न्यायालय में वकीलों की

दलीलों से कम नहीं कहा जा सकता था। स्वयं तत्कालिन ब्रह्म समाज के अनुयायी होने के कारण किसी मूर्ति अथवा हिन्दू रीति रिवाजों की उपेक्षा उनका एक स्वभाव सा हो गया था अपितु छुट्टपन में ईश्वरानुरागी माता श्रीमति भुवनेश्वरी देवी से पुराणों की कथाऐं सुनते रहने से आस्तिक बुद्धि का लोप भी नहीं हुआ था, वे तो चाहते थे प्रत्यक्ष प्रमाण, ईश्वर का प्रत्यक्ष प्रमाण। श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आने के पश्चात उनमें यह धारणा दृढ हो गई कि ईश्वर या सर्व शक्तिमान सत्ता जो भी है वह किसी भी रूप में और सृष्टि के सर्वोच्च जीव, मनुष्य के रूप में भी हो सकती है, जो कि खाता, पीता और मल–मूत्र का भी त्याग करता है। उनके गुरू ने अपनी सरल भाषा में उनको जो भी उपदेश दिये उसे वे पूर्णतया जॉच लेने के लिए भी नरेन्द्र को कहते रहे, जिसे नरेन्द्र ने हर स्तर पर परखा। श्रीरामकृष्ण उनके इस स्वभाव पर बहुत प्रसन्न होते और कहते कि सौदा खरीदने से पहले उसे अच्छी तरह से जॉच लेना चाहिए और तो और वे यह भी कहते कि साधु को दिन में भी देखना और रात में देखना तब उस पर विश्वास करना।

श्रीरामकृष्णदेव अपनी अनुभूति के सम्बन्ध में कहा करते थे कि वे जो भी बातचीत कर पाते हैं वे ऐसा उस अनुभूति से सौ हाथ नीचे आकर कर रहे हैं और जो जीव जगत वे देख रहे हैं वह उसी परमात्मा के रूप ही हैं सबको नमस्कार कर वे बताते थे कि जैसे बहुत से, विभिन्न प्रकार एवं आकार के तकिए रखे रहते हैं पर उनमें एक ही कपास अथवा रूई भरी रहती है वैसे ही यह सम्पूर्ण जगत, ईश्वर से ही ओतप्रोत हैं।

श्रीरामकृष्णदेव युवा–वर्ग के आकर्षण–केन्द्र क्यों हैं?

श्रीरामकृष्णदेव के पास उस समय के सर्वश्रेष्ठ एवं सम्भ्रान्त कहे जाने वाले युवक आते थे सिर्फ इसीलिए कि प्रचलित शिक्षा उन्हें वो नहीं दे पा रही थी जो पूर्णता की ओर ले जाए। श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं अपने बाल्यकाल में पढने में रूचि नहीं दिखाई क्योंकि उनकी भाषा में केला चावल बॉधना सिखाने वाली विद्या अर्थात केवल अर्थोपार्जन सिखाने वाली तपस्या उन्हें रास नहीं आती थी पर ज्ञान पाने की लालसा भी उनमें कम नहीं थी और यह लालसा उस समय जगन्नाथपुरी दर्शन को जाने वाले सन्यासी एवं भक्त लोग जो ग्राम की एक चट्टी पर विश्राम के लिए रूकते थे, के निकट समालोचना से पूरी होती थी। वे भूरिःश्रवा थे। सभी धर्मों के ग्रन्थ उन्होंने सुन रखे थे और उनके स्वच्छ चित्त पर ऐसे अंकित हो जाते थे मानों कि वे उस धर्म के एकमात्र ज्ञाता हैं। उनकी यह श्रवणम् क्रिया, मननम् एवं निदिध्यासनम् के पश्चात् अनुभूति में बदल कर ही दम लेती थीं। इसीलिए उन्नीसवीं शताब्दी के इस विलक्षण महापुरूष के पास समाज के सभी वर्ग आकर शान्ति लाभ कर पाते थे। एक काम कांचन त्यागी व्यक्ति के पास आकर सभी को क्या मिलता था जो नाम–यश और धन–सम्पदा में भी नहीं मिलता है। इस सम्बन्ध में एक कथा बुजुर्गों से सुनने को मिलती है –

> एक बार की बात है एक राज्य की सभा में एक योगी पधारे, उनकी सेवा शुश्रूषा के पश्चात जब कुछ संस्मरण एवं प्रवचन को सुनाने के लिए आग्रह किया तो वे यति अपने आसन पर बैठ कर सत्संग करने लगे। महाराजा एवं महारानी के अलावा सभी राजपरिवारों की सभा भी पण्डाल में बैठी। सभी सत्संग में इतने डूब गऐ थे कि उन्हें यह भान ही नहीं हुआ कि उनके महल का राजकोष खुला है और उसके किवाड पर भी ताले नहीं लगे हैं, मौका देख कर चोरों ने सैंध मारी और माल ले जाने के लिए अपने

बोरों में भरना शुरू कर दिया, ऐसा देख कर दासियॉ भागती हुई आईं और महाराजा और महारानी को समाचार दिया और चिल्लाने लगी कि वे कुछ करें, ऐसा सुनकर महारानी बोलीं कि यदि चोर लोग वो सब ले जाना चाहतें हैं तो ले जाए पर महापुरूष के प्रवचन को सुने बगैर वे वहॉ से नहीं जाऐंगी, क्योंकि ये महापुरूष जो बातें बोल रहे हैं वे सब उन सब कितने ही खजानों के त्याग से ही उन्हें प्रकट हुई हैं और निश्चय ही ये सब इतनी मूल्यवान हैं कि धन, स्त्री पुत्र इत्यादि को छोड कर ही इन महापुरूष ने इन्हें पाया है। उन्होंने दासी को कहा कि चोर को कहो जितना चाहे वह खजाने से ले जाए पर जो खजाना अभी उनको मिल रहा है वो चोर कभी भी नहीं ले जा सकता। चोर यह सुनकर आवाक् हो गया और उस स्थान पर आकर महापुरूष के चरणों में प्रणाम कर असली खजाने की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने लगा और यह खजाना था त्याग और सेवा।

श्रीरामकृष्णदेव के पास यह एक ऐसा खजाना है जिसके लिए तत्कालीन पढे लिखे, डिग्री धारी हैडमास्टर, चिकित्सक, प्रसिद्ध लेखक, अभिनेता, समाज सुधारक, सभी धर्मों के शीर्ष इत्यादि सभी भागे–भागे चले आते हैं क्योंकि उनकी डिग्रियॉ और सामाजिक सम्मान, उनको सिर्फ खाना–पीना, रहने के लिए घर या कुछ सुख–सुविधाऐं ही प्रदान कर रही हैं परन्तु मन में जो स्व–स्वरूप के प्रति प्यास है वह नहीं बुझाती, यह प्यास बिना किसी विश्वविद्यालय की डिग्री धारण किऐ श्रीरामकृष्णदेव के पास जाने से शान्त होती है। अपनी साधनाओं का खजाना बॉटने के लिए वे सब समय उत्सुक हैं वे कहते हैं कि ईश्वर की कृपा वायु तो सब समय बही जा रही है तुम सिर्फ अपनी पाल तान दो। श्रीरामकृष्णदेव की ज्ञान पिपासा किसी भी स्वाध्यायी युवक से कम नहीं थी, उस समय के प्रचलित नवीन आविष्कारों के प्रति उनकी उत्सुकता उन्हें आधुनिक बनाती है, उनकी शिक्षाओं में उन सबकी उपमाऐं हैं, आज के परिदृश्य में देखने से उन्हें एक प्रोफेसर, जिसे नोबेल पुरूस्कार मिला हो से कम नहीं कहा जा सकता है। दक्षिणेश्वर में निवास करने की अवधि में, अपनी साधना एवं सिद्धि को उपयुक्त अधिकारी को बॉटना चाहते थे और संसार में अभी तक जो नहीं फसा, ऐसा युवक जब आता तो उसे देख वे बहुत प्रसन्न होते थे कि उस किशौरावस्था से युवा होते निर्मल एवं जिज्ञासु मन पर ईश्वर का सुसंस्कार पड जाए तो वह संसार की ज्वाला एवं आसक्ति में जलने से बच जाएगा। इसी कारण युवाओं का उनके प्रति आकर्षण स्वाभाविक है और स्वामी विवेकानन्द जो उस समय नरेन्द्रनाथ के रूप में प्रखर एवं मेधावी छात्र थे अपनी मुमुक्षा की शान्ति के लिए श्रीरामकृष्णदेव जैसे वैज्ञानिक के पास आने से कैसे वंचित रह सकते थे। स्वयं श्रीरामकृष्णदेव नरेन्द्र को बहुत पसन्द करते थे और उनकी प्रशन्सा करते हुए थकते नहीं थे, एक समय वे किसी से कह रहे हैं कि नरेन्द्रनाथ उनके **फरेन्ड** हैं। आज भी श्रीरामकृष्णदेव युवा वर्ग को नई दिशा एक मित्र के रूप में दिखाते हैं उनके सामने आचार्य या पिता या महात्मा कहलाने की इच्छा नहीं रखते वे तो बस अपने खजाने को बॉटना चाहते हैं। श्रीरामकृष्णदेव यह भी कहते हैं कि यहॉ क्यों इतने लोग आते हैं क्योंकि किसी को कुछ देना नहीं पडता। युवाओं को सिर्फ उनके पास पहॅुच जाना है बाकि वे स्वयं कर लेंगें।

श्रीरामकृष्णदेव की विलक्षणता

श्रीरामकृष्णदेव का जीवन तो विलक्षण–भावों से ऐसे ओत–प्रोत है कि उसे समझने के लिए साधारण स्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति के लिए भी सौ जीवन अवश्य ही कम पडेंगे। परन्तु

उनके जीवन का अध्ययन करने वाले के लिए एक बात अवश्य तय है कि **उन्हें धर्म के नाम पर कोई मूर्ख नहीं बना सकता है।** उनका जीवन एक वैज्ञानिक जीवन के जैसा है जिसमें उनका अपना तन–मन एक प्रयोगशाला है और उस समय के प्रचलित धर्म एवं पन्थ उनके प्रयोगों के कारण हैं, वे उनका पालन इसी उत्सुकता के साथ करते जाते हैं कि इन प्रत्येक धर्मों से अन्त में किस प्रकार के रसायन की प्राप्ति होती है? यह श्रीरामकृष्णदेव; गदाधर अर्थात गदाई जो कि उनके बचपन का नाम था, एक अद्भुत ग्रामीण–पाठशाला कामारपुकुर ग्राम में अल्प पढा–लिखा वैज्ञानिक है, जिसे पढे–लिखे लोग निरक्षर ही कहेंगे, क्योंकि उनके पास आज के शिक्षित कहे जाने वाले लोगों के जैसी डिग्री भी नहीं है, किन्तु जिसकी उत्सुकता, प्रयत्नों एवं आविष्कारों ने मानव समाज के सामने एक रहस्य उद्घाटित किया कि हम एक ही ईश्वर को नाना रूपों में, नाना पन्थों से, नाना नामों से पुकारते हैं जिसे सनातन धर्म **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति** के रूप में घोषित करता आ रहा है परन्तु जिसे प्रमाण के साथ सिद्ध करने के लिए जैसे इसी वैज्ञानिक की प्रतीक्षा में था। उनका जीवन बौद्धिक क्षमताओं के लिए हमें आकर्षित नहीं करता अपितु उनके बाल–सुलभ स्वभाव, सम्पूर्ण ईश्वर–निर्भरतापूर्ण–प्रार्थनाऐं और सरल वाणी में ऋषि–तुल्य उच्च तत्वों की व्याख्या, जिनमें लोकोक्तियॉ, ग्रामीण अंचल से उपमाऐं, लोक संगीत, नाटक और जीवन शैलियों पर हास्य एवं व्यंग्य हम सभी को उनके गंगा जल जैसे निर्मल मन में निमग्न करने के लिए बाध्य करते हैं। उनकी उपलब्धियों के लिए उन्हें यदि किसी सिंहासन पर बैठाना कोई चाहे और कोई नाम देना चाहे तो मुश्किल में पड जाएगा क्योंकि उन्हें तो प्रत्येक धर्म का सर्वोच्च सिंहासन भी छोटा पडेगा क्योंकि उनके ये आविष्कार तो नित्य स्थाण–अचल–अजर–अमर–सनातन–अविनाशी उस परमात्मा के हैं जिनको जान लेने पर भी जानना बाकी रह जाता है और धर्म के नाम पर सिर्फ सनातन सत्य ही वह धर्म है जो उनके लिए उपयुक्त जान पडता है जिसे संकुचित बुद्धि वाले स्वयं को अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के घेरे में बांध कर राजनैतिक प्रसन्नता प्राप्त करते हैं।

मनीषी सन्त रोमा रोला ने सन् 1928 में उनके जीवन से प्रभावित हो कर उनकी एक जीवनी लिखी जिसमें वे अपने पश्चिमी पाठकों को सम्बोधित करते हुए लिखते हैं

> ''मैं यूरोप के निकट ला रहा हूं आत्मा का नव–संदेश भारत का वो महासंगीत जिसका नाम रामकृष्ण है यह दिखाया जा सकता है अतीत से निकलने वाले एकशत विभिन्न स्वर से बना है जिस व्यक्ति का चित्र मैं यहॉ प्रस्तुत करना चाहता हॅू वह तीस करोड लोगों के दो सहस्र वह आध्यात्मिक रूप था यद्यपि उसको गुजरे चालीस वर्ष हो गऐ हैं उनकी आत्मा आध्यात्मिक आधुनिक भारत को प्राणवित करती है। गान्धी के समान कर्मक्षेत्र का कोई हीरो नहीं था लेकिन वह टैगोर के समान कला व चिन्तन का सागर भी नहीं था वह तो बंगाल के एक छोटे से गॉव का एक सामान्य सा ब्राह्मण था जिसका बाहरी जीवन अपनी देश की राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों की परीणीति से बाहर एक सीमित ढांचे में ढला हुआ था जिसमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं थी किन्तु उसके भीतरी जीवन में मानव व देवताओं के समूची वहनताओं को आत्मसात करने की चेष्टा थी। वह उस दैवी शक्ति के उत्स का ही भाग था जिसके गीत मिथिला के पुराण कवि कमलापति एवं बंगाल के कवि रामप्रसाद ने गाए थे श्रीरामकृष्ण का अधिकांश जीवन कलकते के दक्षिणेश्वर स्थित काली मन्दिर के छोटे से कमरे में ही बीता वे न तो प्रचारक थे न उत्रेसक न सुधारक अपने एक छोटे से कमरे में बैठ कर ही जो कुछ किया और

कहा उसका प्रभाव दुनिया में इतनी तीव्र–गति से फैला कि इन्हें न देखकर सिर्फ उनके जीवन एवं शिक्षाऐं पढकर ही उनके जीवन काल में ही प्रख्यात प्राच्य विचारक मैक्समूलर ने उन्हें 'सच्चा महात्मा' कहकर 'नाइन्टिन्थ सेन्चूरी' पत्रिका में एक लेख लिखकर इनके नाम को विश्व भर में फैला दिया । श्रीरामकृष्णदेव ने सभी धर्मों की साधनाऐं कर उसी एक सत्य को प्राप्त किया था तथा उसके पलस्वरूप के सतत ईश्वरीय बोध में रहते हैं उससे प्रभावित हो मैक्समूलर ने लिखा ईश्वर की उपस्थिति का यह सतत् बोध वास्तव में ऐसी सामान्य भूमि है जिस पर भविष्य में एक भावी मन्दिर की कल्पना कर सकते हैं जिसमें हिन्दू और गैर–हिन्दू उसी एक परमेश्वर की उपासना के लिए अपने हृदय एवं हाथों को जोड एक होंगे।

"Allowing for differences of country and of time, Ramakrishna is the younger brother of our Christ....

I am bringing to Europe, as yet unaware of it, the fruit of a new autumn, a new message of the Soul, the symphony of India, bearing the name of Ramakrishna. It can be shown (and we shall not fail to point out) that this symphony, like those of our classical masters, is built up of a hundred different musical elements emanating from the past. But the sovereign personality concentrating in himself the diversity of these elements and fashioning them into a royal harmony, is always the one who gives his name to the work, though it contains within itself the labour of generations. And with his victorious sign he marks a new era. The man whose image I here evoke was the consummation of two thousand years of the spiritual life of three hundred million people. Although he has been dead forty years, his soul animates modern India. He was no hero of action like Gandhi, no genius in art or thought like Goethe or Tagore. He was a little village Brahmin of Bengal, whose outer life was set in a limited frame without striking incident, outside the political and social activities of his time. But his inner life embraced the whole multiplicity of men and Gods. It was a part of the very source of Energy; the Divine S*akti*, of whom Vidyàpati, the old poet of Mithilà, and Ràmaprasàda of Bengal, sing. Very few go back to the source. The little peasant of Bengal by listening to the message of his heart found his way to the inner Sea. And there he was wedded to it, thus bearing out the words of the Upanishads : 'I am more ancient than the radiant Gods. I am the first-born of the Being. I am the artery of Immortality.' It is my desire to bring the sound of the beating of that artery to the ears of fever-stricken Europe, which has murdered sleep. I wish to wet its lips with the blood of Immortality.

महात्मा गांधी लिखते हैं कि श्रीरामकृष्ण का जीवन चरित्र धर्म के व्यावहारिक आचरण का प्रतिमूर्ति था ईश्वर से प्रत्यक्ष साक्षात्कार का ही जीवन है। प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

"Sri Ramakrishna's life is the life of seeing God face to face."

श्रीरामकृष्णदेव की कुछ चुनौती–पूर्ण शिक्षाऐं

श्रीरामकृष्णदेव के सफलतम साधन के पर्यायों से जो निष्कर्ष निकलते हैं वे आज के विचारकों के लिए अति प्रासंगिक है जैसे –

- ईश्वर प्राप्ति ही जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य हो सकता है।
- यदि भगवान की पूजा एक पत्थर की मूर्ति में हो सकती है तो हाड मॉस के इस मनुष्य में क्यों नहीं हो सकती? मनुष्य तो इस जगत का सर्वोच्च प्राणी है।
- ऑखें बन्द कर लेने पर भगवान के दर्शन हो सकते हैं तो सर्वव्यापी उस परमात्मा के दर्शन ऑखें खोलने पर क्यों नहीं हो सकते हैं? नर को नारायण देखकर उसकी पूजा क्यों नहीं की जा सकती?
- जीवों पर दया करना अच्छी बात है पर दया करने वाले तुम कौन होते हो, जब ईश्वर ही सब और है तो दया नहीं, सेवा करने का ही हमारा अधिकार है ।
- जीवन के सभी कष्टों का यदि विश्लेषण किया जाए तो **काम और कांचन** ही प्रत्येक दुश्चिन्ता एवं विलाप के कारण रहते हैं ।
- जब तक जीयूं, तब तक सीखूॅं।
- उनके श्रीमुख से निःसृत ये छोटे छोटे मन्त्र –
  गुरू–कृष्ण–वैष्णव तीनों एक हैं, जितने मत हैं उतने ही पथ हैं, भक्त की जाति नहीं देखी जाती है, भक्त–भागवत–भगवान तीनों एक हैं और गीता–गंगा–गायत्री तीनों एक ही स्तर पर ले जाती है, इत्यादि शिक्षा सूत्र समाज की छोटी बडी सभी समस्याओं का समाधान कर डालते हैं।
- मनुष्य–वही मनुष्य है जिसे अपने मान का होश है अर्थात मनुष्य होने का होश है।
- इन्द्रिय–संयम एवं गृहस्थ–धर्म निर्वाह पर वे कहते थे कि एक या दो सन्तान होने के बाद पति–पत्नि को भाई–बहिन के जैसे रहना चाहिए।
- दूर से देखने से जल का रंग नीला दिखाई पडता है पर पास में जाकर हाथ में लेने पर तो कोई रंग नहीं लगता। ऐसे ही ईश्वर–भक्त प्रथमावस्था में रूप देखता है और जब वह परिपक्वता प्राप्त करता है तो ईश्वर की अनुभूति निराकर के रूप में भी कर पाता है। इसिलिए साकार एवं निराकार दोनों ही सत्य हैं।
- सभी ईश्वर से चाहते हैं किन्तु ईश्वर को कौन चाहता है।
- ईश्वर में अनुराग आने से सांसारिक–विषयों में वैराग्य अपने आप आ जाता है।
- व्याकुलता ही धर्म की अनुभूति का प्रमुख सहायक तत्व है।
- "सा चातुरी; चातुरी" अर्थात धन कमाने के लिए कितने मिथ्याभाषण एवं भ्रष्टाचार किए जा रहे हैं किन्तु वही व्यक्ति चतुर है जो अपने मनुष्य होने पर सावधान है और ईश्वर–प्राप्ति के लिए आवश्यक उपक्रम कर रहा है, क्योंकि वह एक सनातन वस्तु ईश्वर को पायेगा किन्तु रूपया पैसा के लिए जो चतुराई कर रहा है वह तो अनित्य, एवं विनाशी भोजन, कपडा और मकान आदि ही जुटा पाऐगा।

ये कुछ बातें सिर्फ वाग्मिता एवं सज्जनता के आभूषण के रूप में वाणी–विलास के लिए श्रीरामकृष्णदेव ने नहीं कही थी, वे तो व्याख्यान के लिए भी कहीं नहीं गये और न ही इस हेतु प्रयास भी किया, ये सभी तो सिर्फ उनके प्रयोगों के निष्कर्षों पर आधारित था ।

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा नरेन्द्र को शिक्षा एवं आदेश

ऐसे जिनके गुरू हैं वे स्वामी विवेकानन्द, भारतवासियों को जिस उपासना की ओर लगाना चाहते हैं वो न केवल सर्वोच्च धर्मोपलब्धि का साधन है अपितु भारत वर्ष की उन्नति का भी मार्ग प्रशस्त करती है। स्वामी विवेकानन्द आज भारतवर्ष के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए बल एवं शक्ति के स्रोत्र कहलाते हैं । उनके साधना के प्रारम्भिक जीवन की प्रमुख घटनाओं में एक विशेष घटना है जिसमें हम देख पाते हैं कि उन्हें श्रीरामकृष्णदेव कैसे विश्व में धर्म–जागृति के लिए प्रस्तुत करते हैं। नरेन्द्र जब साधना के उच्चतर स्तर 'निर्विकल्प समाधि' को प्राप्त करते हैं तब उनकी तीव्र इच्छा होती है कि वे उसी अवस्था में शुकदेव की भांति रहें और शरीर रक्षार्थ अन्न जल–ग्रहण कर वापस उसी स्तर में लीन हो जाएं, इस अवस्था में संसार का लोप हो जाता है और साधक एक असीम अनिर्वचनीय आनन्द में डूब जाता है पर यह आनन्द अफीम खाने जैसा नहीं है अपितु नाम–रूप के संसार से उपराम होने पर जो सत्ता रहती है, उसी निराकर ईश्वरीय अनुभूति; जिसे समाधि कहते हैं, में लीन रहना चाहते थे। आश्चर्य की बात है कि भगवान श्री रामकृष्णदेव उन्हें उस सत्ता में रहने की इच्छा करने पर धिक्कारते हुए कहते हैं कि उन्होंने सोचा था कि नरेन्द्र एक महान वट–वृक्ष के समान होगा जहॉ संसार की ज्वाला से दग्ध–प्राणी आकर कुछ विश्राम ले सकेंगें और आत्म–उपलब्धि कर उर्ध्वगामी बनेंगे। धर्म की उत्कृष्ट उपलब्धि तो वन के वेदान्त को सामान्य जन के लिए सुगम्य बनाना ही स्वामी विवेकानन्द का प्रमुख कार्य बन गया, जिसे उनके गुरू ने उन्हें सौंपा था । स्वयं श्री रामकृष्णदेव अपनी साधन अवस्था में निर्विकल्प–समाधि के आनन्द को प्राप्त कर उसी अवस्था में रह सकते थे और चाहते तो उसी अवस्था में शरीर त्याग सकते थे पर वे तो नरेन्द्र, राखाल इत्यादि जैसे योग्य शिष्यों की प्रतीक्षा में थे । उन्होंने तो लिख कर नरेन्द्र को जगद्गुरू के रूप में भी अधिकृत कर दिया – **'नरेन्द्र शिक्षा देगा'**।

स्वामी विवेकानन्द 'वेदान्त केसरी' का आहवान

परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द अपने देशवासियों को अपने मद्रास–व्याख्यान 'भारत का भविष्य' में कहते हैं –

> **"आगामी पचास वर्षों के लिए यह जननी जन्मभूमी भारतमाता ही मानो आराध्य–देवी बन जाए। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी–देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी–देवता सो रहे हैं । जिन व्यर्थ के देवी–देवताओं को हम नहीं देख पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौडें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें ? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव–देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं । आध मील चलने की हममें शक्ति ही नहीं और हम हनुमानजी की तरह**

एक ही छलॉग में समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता । जिसे देखो, वही योगी बनने की धुन में है, जिसे देखो, वही समाधि लगाने जा रहा है। ऐसा नहीं होने का। दिन भर तो दुनिया के सैकडों प्रपंचों में लिप्त रहोगे, कर्मकांड में व्यस्त रहोगे ओर शाम को ऑख मूंदकर, नाक दबाकर सॉस चढाओ–उतारोगे। क्या योग की सिद्धि और समाधि को इतना सहज समझ रखा है कि ऋषि लोग, तुम्हारे तीन बार नाक फडफडाने और सॉस चढाने से हवा में मिलकर तुम्हारे पेट में घुस जाएँगे? क्या इसे तुमने कोई हॅसी–मजाक मान लिया है? ये सब विचार वाहियात हैं।

जिसे ग्रहण करने या अपनाने की आवश्यकता है, वह है चित्तशुद्धि। और उसकी प्राप्ति कैसे होती है? इसका उत्तर यह है कि सबसे पहले उस विराट् की पूजा करो, जिसे तुम अपने चारों ओर देख रहे हो – 'उसकी' पूजा करो। 'वर्शिप' ही इस संस्कृत शब्द का ठीक समानार्थक है, अंग्रजी के किसी अन्य शब्द से काम नहीं चलेगा।

''अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ।
अर्हयद्दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा। ।श्रीमद्भागवत।।

ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम आस–पास और आगे–पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सबसे पहले पूज्य हैं, हमारे अपने देशवासी। परस्पर ईर्ष्या–द्वेष करने और झगडने के बजाय हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। यह अत्यन्त भयावह कर्म है, जिसके लिए हम क्लेश झेल रहे हैं। फिर भी हमारी ऑखें नहीं खुलतीं ।''

स्वामीजी के ये तपःपूत उद्‌गार अपने गुरू की सार्वभौमिक शिक्षाओं की पुनरावृति ही है वे भारतवर्ष में प्रचलित हिन्दु–धर्म के नाम पर विभिन्न सम्प्रदायों को एक कर संगठित स्तर पर विकास चाहते हैं। वे एक सार्वभौमिक मन्दिर की परिकल्पना करते हुए कहते हैं –

''सबसे पहले हमें एक मन्दिर की आवश्यकता है, क्योंकि सभी कार्यों में प्रथम स्थान हिन्दू लोग धर्म को ही देते हैं। तुम कहोगे कि ऐसा होने से हिन्दुओं के विभिन्न मतावलम्बियों में परस्पर झगडे होने लगेंगे। पर मैं तुमको किसी मत विशेष के अनुसार वह मन्दिर बनाने को नहीं कहता। वह इन साम्प्रदायिक भेद–भावों के परे होगा। उसका एकमात्र प्रतीक होगा ॐ, जो कि हमारे किसी भी धर्म–सम्प्रदाय के लिए महानतम प्रतीक है। यदि हिन्दुओं में कोई ऐसा सम्प्रदाय हो, जो इस ओंकार को न माने, तो समझ लो कि वह हिन्दू कहलाने योग्य नहीं है। वहॉ सब लोग अपने–अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही हिन्दुत्व की व्याख्या कर सकेंगे, पर मन्दिर हम सब के लिए एक ही होना चाहिए । अपने सम्प्रदाय के अनुसार जो देवी–देवताओं की प्रतिमा–पूजा करना चाहें, अन्यत्र जाकर करें, पर इस मन्दिर में वे औरों से झगडा न करें। इस मन्दिर में वे ही धार्मिक तत्व समझाए जाएँगे, जो सब सम्प्रदायों में समान हैं। साथ ही हर एक सम्प्रदाय वाले को अपने मत की शिक्षा देने का यहॉ पर अधिकर रहेगा, पर एक प्रतिबन्ध रहेगा कि वे अन्य सम्प्रदायों से झगडा नहीं करने पाऍगे।''

उनके श्रीगुरूदेव की अनुभूतियों के आधार पर ही स्वामी विवेकानन्द ने सार्वभौमिकता का ऐसा प्रस्ताव रखा क्योंकि वे जानते हैं कि अन्ततः सभी सम्प्रदाय जिस अनुभूति की बात करते हैं वह एक ही है सिर्फ प्रचलित मान्यताओं के आधार पर विधियों की भिन्नता रहती है। वे ऐसे

आचार्य तैयार करना चाहते हैं जो सनातन धर्म के सत्यों पर आधारित मत प्रचलित करें। वे कहते हैं

''इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक दूसरी बात यह है कि इसके साथ ही एक और संस्था हो, जिससे धार्मिक–शिक्षक और प्रचारक तैयार किये जाएँ और वे सभी घूम–फिरकर धर्म प्रचार करने को भेजे जाएँ। परन्तु ये केवल धर्म का ही प्रचार न करें, वरन् उसके साथ–साथ लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करें। जैसे हम धर्म का प्रचार द्वार–द्वार जाकर करते हैं, वैसे ही हमें लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करना पडेगा। यह काम आसानी से हो सकता है। शिक्षकों तथा धर्म–प्रचारकों के द्वारा हमारे कार्य का विस्तार होता जाएगा, और क्रमशः अन्य स्थानों में ऐसे ही मन्दिर प्रतिष्ठित होंगे और इस प्रकार समस्त भारत में यह कार्य फैल जाएगा। यही मेरी योजना है।''

यहाँ स्वामीजी जिस प्रकार धर्म की रक्षा का कार्य हम पर सौंपते हैं उसी प्रकार उसको प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए प्रचारकों को अभ्युदय एवं श्रेयस दोनों की शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए आदेश देते हैं। भौतिक–जगत में सत्कार्य करने के लिए जब मन प्रस्तुत होता है तो बुद्धि प्रश्न करती है कि ये सब करने के लिए धन आवश्यक है और चंचला–लक्ष्मी को पाना क्या आसान होगा? इस प्रकार के विचारकों एवं सुधारकों के लिए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं।

''तुमको यह बडी भारी मालूम होगी, पर इसकी इस समय बहुत आवश्यकता है। तुम पूछ सकते हो, इस काम के लिए धन कहाँ से आएगा? धन की जरूरत नहीं। धन कुछ नहीं है। पिछले बारह वर्षों से मैं ऐसा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि मैं यह नहीं जानता कि आज यहाँ खा रहा हूँ, तो कल कहाँ खाऊँगा। और न मैंने कभी इसकी परवाह ही की। धन या किसी भी वस्तु की जब मुझे इच्छा होगी, तभी वह प्राप्त हो जाएगी, क्योंकि वे सब मेरे गुलाम है, न कि मैं उनका गुलाम हूँ। जो मेरा गुलाम है, उसे मेरी इच्छा होते ही मेरे पास आना पडेगा। अतः उसकी कोई चिन्ता न करो।''

स्वामी विवेकानन्द जिन बारह वर्षों की यहाँ बात कह रहे हैं वह उनकी परिव्राजक अवस्था थी जो भगवान श्रीरामकृष्णदेव के तिरोधान के पश्चात सन् 1886 में शुरू होती है जिसमें वे एक सन्यासी के रूप में तत्कालीन पराधीन भारतवर्ष का भ्रमण करते हैं और उसकी गुलामी के दिनों की विषण्णता, दरिद्रता, कातरता, सामाजिक एवं धार्मिक कट्टरताओं के साथ साथ सांस्कृतिक एवं साम्प्रदायिक–सौहार्दता, प्राकृतिक–सम्पन्नता एवं धर्म–निरपेक्षता का प्रत्यक्ष परिचय पाते हैं। धर्म ही हमारे भारतवर्ष का प्राण है, उसकी रीढ की हड्डी है, आवश्यकता थी उस धर्म को विकासोन्मुखी एवं प्रत्येक स्तर पर सहज गम्य बनाने की, शुचिता और छुआछूत जैसे रोगों से मुक्त करने की और आवश्यकता थी मृत्यु के पश्चात् के जीवन का अनुसंधान करने से अधिक प्राथमिकता जीवित अवस्था में उसे प्राप्त करने की है। स्वर्ग या नरक की मिथ्या–परिकल्पनाओं से बाहर आकर इसी जीवन को शक्तिशाली बनाने की। आत्म–बल, बाहू–बल और मनोबल इन तीनों की धाराओं में तीव्रता उत्पन्न करने की। इसके लिए वे अपने देश के नौजवानों को आह्वान करते हुए कहते हैं –

अब प्रश्न यह है कि काम करनेवाले लोग कहाँ हैं। नवयुवकों, तुम्हारे ऊपर ही मेरी आशा है। क्या तुम अपनी जाति और राष्ट्र की पुकार सुनोगे? यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास है, तो मैं कहूँगा कि तुममें से प्रत्येक का भविष्य उज्जवल है। अपने आप पर

अगाध, अटूट विश्वास रखो, वैसा ही विश्वास, जैसा मैं बाल्य काल में अपने ऊपर रखता था और जिसे मैं अब कार्यान्वित कर रहा हूँ। तुममें से प्रत्येक अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरूज्जीवित कर सकोगे। फिर तो हम दुनिया के सभी देशों में खुले आम जाएँगे और आगामी दस वर्षों में हमारे भाव उन सब विभिन्न शक्तियों के एक अशंस्वरूप हो जाएँगे, जिनके द्वारा संसार का प्रत्येक राष्ट्र संगठित हो रहा है। हमें भारत में बसनेवाली और भारत के बाहर बसनेवाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमें कर्म करना होगा। और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए।

वेदों में कहा गया है, 'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेधावाले और उत्साही मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं।' (आशिष्ठो, बलिष्ठो, दृढिष्ठो, साधु, युवा स्यात्)।

तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण–शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान् के चरणों पर चढाए जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरों आप खडे हो जाओ, देर न करो, क्योंकि जीवन क्षणस्थायी है। वकील बनने की अभिलाषा आदि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य करने हैं। तथा इससे भी ऊँची अभिलाषा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानव समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो। इस जीवन में क्या है? तुम हिन्दू हो और इसलिए तुम्हारा यह सहज विश्वास है कि तुम अनन्त काल तक रहनेवाले हो। कभी–कभी मेरे पास नास्तिकता के विषय पर वार्तालाप करने के लिए कुछ युवक आया करते हैं। पर मेरा विश्वास है कि कोई हिन्दू नास्तिक नहीं हो सकता। सम्भव है कि किसी ने पाश्चात्य ग्रन्थ पढे हों और अपने को भौतिकवादी समझने लग गया हो। पर ऐसा केवल कुछ समय के लिए होता है। यह बात तुम्हारे खून के भीतर नहीं है। बात तुम्हारी रग–रग में रमी हुई है, उसे तुम निकाल नहीं सकते और न उसकी जगह और किसी धारणा पर तुम्हारा विश्वास ही हो सकता है। इसीलिए वैसी चेष्टा करना व्यर्थ होगा। मैंने भी बाल्यावस्था में ऐसी चेष्टा की थी, पर वैसा नहीं हो सकता। जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनन्त है, और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खडा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। यही हमारा निश्चय हो और वह भगवान्, जो हमारे शास्त्रों के अनुसार शत्रुओं के परित्राण के लिए संसार में बार–बार आविर्भूत होता है, वही महान् कृष्ण हमको आशीर्वाद दें एवम् हमारे उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हो।"

उपसंहार

स्वामी विवेकानन्द जो घनीभूत भारत के प्रतीक हैं उनका अध्ययन हमारे जीवन को तो उन्नत करेगा ही साथ ही हमारे देश को उस उन्नत आध्यात्मिक शिखर पर आसीन कर वैज्ञानिक प्रगति के आयामों में स्वयं की महिमा को प्रकाशित करेगा। आज उनके पास बैठ कर उनकी वाणी का श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करना ही उपासना का सार है आइये उनकी कवित्व क्षमता से प्राणित इन्हीं शब्दों का स्मरण करें और सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति किए बगैर रूके नहीं।

''जीवन–कर्म सहज भीषण है।
उसका सब सुख – केवल क्षण है।
यद्यपि लक्ष्य अदृश्य, धूमिल है।
फिर भी वीरहृदय! हलचल है?
अन्धकार को चीर अभय हो–
बढो साहसी! जगविजयी हो।

प्रकाशकीय –

इस पुस्तक में स्थान–स्थान पर जिन उद्धरणों को प्रस्तुत किया गया है वे सब रामकृष्ण–विकेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित पुस्तकों से लिए गये हैं।